संस्कृत साहित्य सौरभ
वासवदत्ता

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

सुबन्धु-कृत

वासवदत्ता

●

श्री नारायणदत्त पाण्डे
द्वारा
कथासार

●
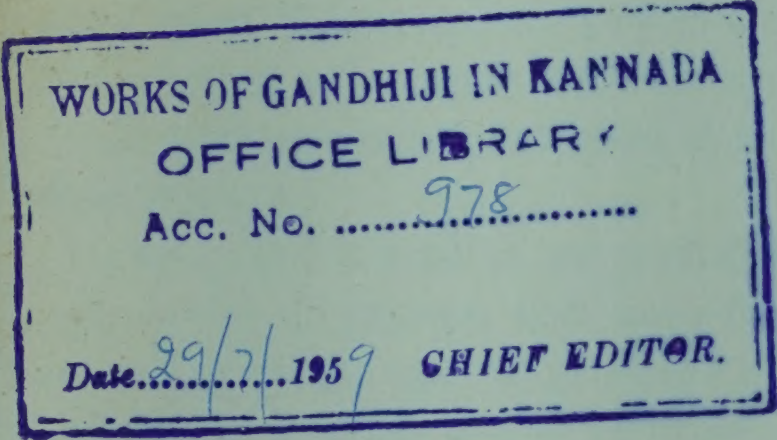
विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

●

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली
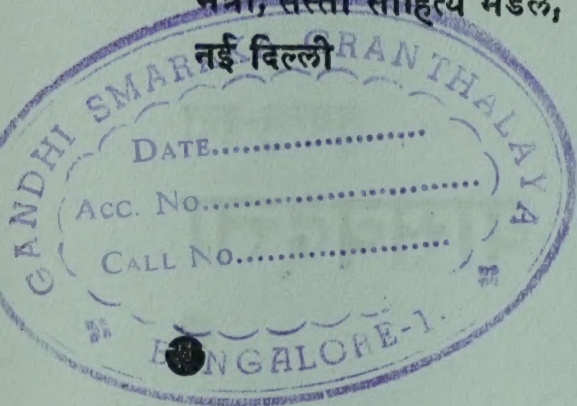
पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना
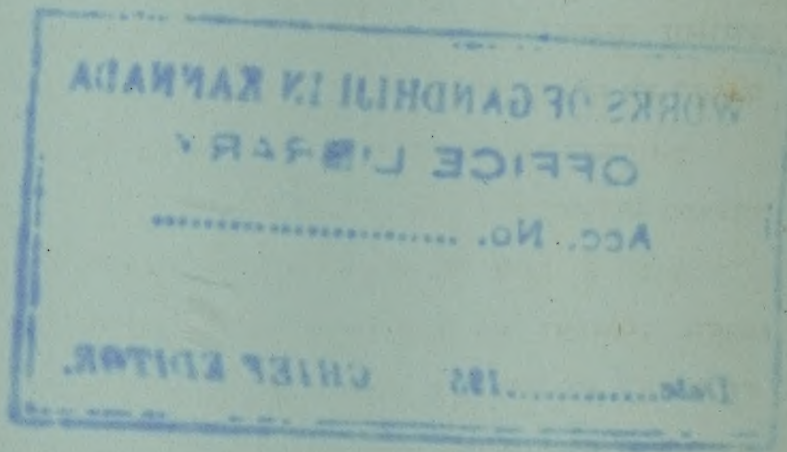
मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली
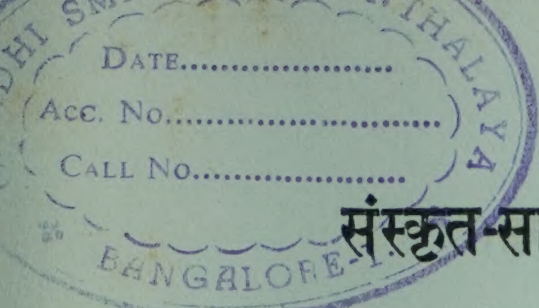
संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलतः अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

यद्यपि संस्कृत गद्य में कथा और आख्यायिका लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से ही रही है, तथापि आज इस प्रकार के साहित्य की इनीगिनी पुस्तकें ही मिलती हैं। कण्ठस्थ करने के लिए गद्य-काव्य पद्य की भांति सुगम नहीं होता इसी कारण संस्कृत गद्य के अनेक ग्रन्थों का लोप हो गया। आज केवल उनके लेखकों के नाम का उल्लेख ही हमें दूसरे ग्रंथों में मिलता है। काल के इस विनाशक प्रभाव से बचकर संस्कृत गद्य साहित्य के जिन यशस्वी लेखकों की कृतियां आज हम तक पहुंच पाई हैं, उनमें सुबन्धु, बाण और दण्डी—ये तीन प्रधान हैं।

सुबन्धु की कीर्ति बाण ने अपने 'हर्षचरित' की भूमिका में, और वाक्पति-राज ने अपने प्राकृत काव्य 'गौडवहो' में गाई है। इससे यह मालूम होता है कि यह बाण से कुछ पहले अथवा उनके समकालीन रहे होंगे। इसके साथ ही स्वयं सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' में नैय्यायिक उद्योतकर का उल्लेख किया है। इसका अर्थ हुआ है कि वह उद्योतकर के समकालीन अथवा उनके बाद में हुए थे। इस प्रकार सुबन्धु का जीवन-काल ईसा की छठी शताब्दी का अन्तिम तथा सातवीं का प्रारम्भिक भाग माना जा सकता है।

वासवदत्ता की कथा एक साधारण प्रेम-कथा है। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीय' का इसपर स्पष्ट प्रभाव है। फिर भी संस्कृत साहित्य के विद्वानों में आरम्भ से ही 'वासवदत्ता' का बड़ा भारी सम्मान रहा है। इसके कथानक में 'कादम्बरी' के कथानक की भांति कल्पना का कुछ भी चमत्कार नहीं जान पड़ता, लेकिन इसकी भाषा बहुत ही आलंकारिक तथा काव्यमयी है। इसी कारण यह इतना लोकप्रिय हुआ और इसी कारण तथा श्लेष के बहुत प्रयोग के कारण कठिन भी हो गया है।

—सम्पादक
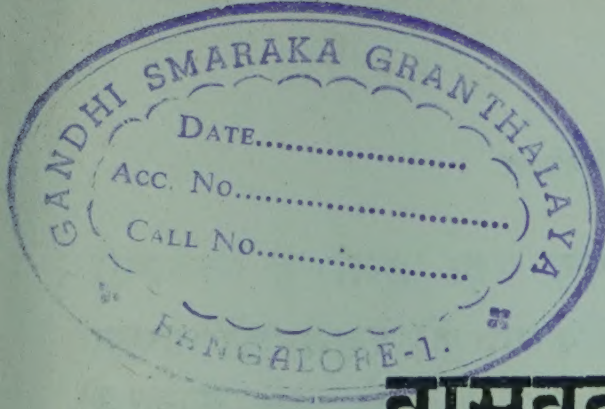
वासवदत्ता

प्राचीन काल में एक बहुत बड़ा दानी, देवताओं का भक्त और कवियों का आदर करनेवाला राजा हुआ है। उसका नाम चिन्तामणि था। उसके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। धर्म के रास्ते पर चलती थी। उसके राज्य में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था और वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था। सब प्रकार के कलाकार उसके राज्य में आश्रय पाते थे। वह सबको प्रसन्न करनेवाला था।

उसका एक पुत्र था। वह बहुत ही सुन्दर और गुणवान था। सारी कलाएँ उसे सिद्ध थीं और शत्रु उसके नाम से भय खाते थे। वह बड़ा ही प्रतापी, सच्चा मित्र और सज्जन था। उसका नाम कंदर्पकेतु था। एक बार सवेरे के समय उसने एक स्वप्न देखा। उस स्वप्न में उसने देखा कि उसके सामने एक कन्या है जो अपूर्व सुन्दरी है और युवती है। राजकुमार बहुत देर तक उस कन्या को देखता रहा। लेकिन अचानक उसकी नींद खुल गई और उसने पाया कि

वह अकेला अपनी शैय्या पर पड़ा हुआ है। जागने पर भी उसके मन से उस कन्या को देखने की इच्छा दूर नहीं हुई। यहां तक कि उस दिन वह शैय्या से उठा भी नहीं। उसने अपने कमरे के किवाड़ बन्द कर लिये और किसीको अपने पास न आने दिया। दूसरी रात आ गई लेकिन वह स्वप्न फिर नहीं आया। वह बहुत व्याकुल हो उठा। उसकी ऐसी दशा देखकर उसके प्यारे मित्र मकरन्द ने उसे बहुत समझाया। कहा, "यह किस बुरे काम में तुम पड़ गए हो। तुम्हारा यह आचरण ठीक नहीं है। यह तो बुरे लोगों का काम है।"

अपने प्यारे मित्र की ऐसी बातें सुनकर राजकुमार ने बड़े दुःख के साथ कहा, "मित्र, यह उपदेश देने का अवसर नहीं है। मेरा सारा शरीर जल रहा है। क्या ठीक है और क्या गलत है यह सब मैं भूल गया हूं। तुम तो मेरे बचपन के साथी हो। मुझे उपदेश मत दो। मेरे साथ चलो।"

यह कहकर राजकुमार अपने मित्र को लेकर और परिजनों की आँख बचाकर वहां से चल पड़े। बहुत दूर जाने पर उन्हें विन्ध्याचल दिखाई दिया। उसकी कन्दराओं में विद्याधर गीत गा रहे थे। उन

गीतों को सुनते हुए मृग इतने तन्मय हो उठे थे कि उनका शिकार करने के लिए शेर वहां आनन्द से घूम रहे थे। हाथियों ने चन्दन के जो पेड़ तोड़ डाले थे उनके कारण वायु चारों ओर सुगन्धि बिखेर रही थी। बन्दर ऊँचे ताल के वृक्षों से गिरे हुए फलों के रस को चाट-चाटकर खा रहे थे। भालू, नीलगाय, शरभ-मृग, शेर, हाथी, साँप और अनेक प्रकार के बन्दरों से वह पर्वत भरा हुआ था। अनेक प्रकार के पेड़ और लताएँ उसकी शोभा बढ़ा रहीं थीं। जगह-जगह बूढ़े अजगरों के शरीर पड़े हुए थे। वे ऐसे लगते थे जैसे इन्द्र के वज्र की चोट से पर्वत की आँतें बाहर निकल आई हों।

पास ही सिप्रा नाम की नदी बह रही थी। उसके किनारे पर कलहंस और सारस गुंजार कर रहे थे। वह नदी कमल के फूलों से भरी हुई थी। केतकी के फूलों से जो पराग बिखर रहा था उससे उस नदी का तट श्वेत रंग का हो गया था। इस प्रकार विन्ध्याचल की शोभा को देखते हुए सन्ध्या आ पहुँची। सूरज वनैले भैंसे की आँख के समान लाल होगया। तब दोनों मित्र जामन के पेड़ के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

जब एक पहर रात बीत गई तो उन्होंने सुना उस वृक्ष के ऊपर शुक और सारिका बातें कर रहे हैं। सुग्गा देर से आया था और सारिका उसे डाँट रही थी। सुग्गे ने कहा, "क्रोध मत करो। मैंने आज एक बड़ी अनोखी कहानी सुनी है। उसे देखा भी है। इसी कारण आने में देर हो गई।" सारिका को यह सुनकर बड़ा कौतुहल हुआ और वह कथा सुनने के लिए आग्रह करने लगी। सुग्गा कहने लगा, "कुसुमपुर नाम का एक नगर है। उसमें बड़े ऊँचे-ऊँचे महल हैं। वहां के रहनेवाले बड़े ही ज्ञानी, अनेक प्रकार की विद्याओं में निपुण और धर्म के मार्ग पर चलनेवाले हैं। उस नगर में स्वयं भगवती दुर्गा चण्डिका के नाम से रहती हैं। देवता और दानव सब उनकी पूजा करते हैं। उसी नगर के समीप भगवती भागीरथी बहती हैं। उसमें अनेक प्रकार के कमल और फूल खिले हुए हैं। उस नगर के राजा का नाम श्रृंगार-शेखर है। वह बहुत ही गुणवान, उदार, पराक्रमी और सज्जनों को आश्रय देनेवाला है। उसकी प्रजा सब तरह से खुशहाल और धर्म के मार्ग का अनुकरण करनेवाली है। राजा के समान ही गुणवती उसकी रानी अनंगवती बहुत सुन्दरी है और सुकुमारी है।

उनके एक पुत्री है जिसका रूप तीनों लोकों को लजाने-वाला है। उसका नाम वासवदत्ता है। समय आने पर वह युवती हुई। लेकिन उसने विवाह करने की इच्छा नहीं प्रगट की।

"एक बार जब बसन्त ऋतु अपने पूरे यौवन पर थी; आम की मंजरियाँ खिल रही थीं; भौंरे गूंज रहे थे; कोयलों के कण्ठ से निकले हुए मधुर स्वर सारे वातावरण में निनादित हो रहे थे; सरोवरों में कमल खिल रहे थे; राजहंसों का शब्द चारों ओर फैल रहा था तब वासवदत्ता के मन में विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसकी सखियों के द्वारा यह बात जानकर राजा ने स्वयंवर का प्रबन्ध किया। सारी पृथ्वी के राजा वहां आ पहुँचे। स्वयंवर सभा में परम सुन्दरी राजकुमारी पालकी में बैठकर पहुँची। उसकी सखियों और दासियों की हँसी से वातावरण गूंज उठा था। उसपर फूलों और खीलों की वर्षा हो रही थी। सभा में राजपुत्र नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषणों से सजे हुए इस बात की कामना कर रहे थे कि राजकुमारी उनके गले में वरमाला पहनाए। लेकिन राजकुमारी किसीको भी पसन्द न कर सकी। उसी रात राजकुमारी ने स्वप्न में एक सुन्दर युवक

को देखा। वह मीठा बोलनेवाला और उदार स्वभाव का था। वह सुशील भी था और चतुर भी था। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की उसपर कृपा थी। तीनों लोकों में वह हर प्रकार से बेजोड़ था। स्वप्न में ही राजकुमारी यह भी जान गई कि यह युवक राजा चिन्तामणि का पुत्र है और इसका नाम कन्दर्पकेतु है। वह सोचने लगी----ब्रह्मा ने अपनी कला को एक ही स्थान पर देखने की इच्छा से इस युवक को बनाया है। और उसके मन में राजकुमार से मिलने की इच्छा जाग्रत हो आई। अब तो वह व्याकुल हो उठी। उसे ऐसा लगा जैसे वह राजकुमार उसकी अन्तरात्मा में विराजमान है। वह उसके विरह में जलने लगी। उसकी सखियों ने उसका वह ताप दूर करने के लिए अनेक उपचार किए, लेकिन वह शान्त नहीं हुई। वह मूर्च्छित हो गई। सखियाँ कभी फूलों के रस का, कभी चन्दन के रस का उपचार करतीं, कभी उसको कमलों से भरे हुए सरोवर के तट पर चन्दन के वृक्ष की छाया में बिठातीं, कभी कदली बन में ले जातीं; कभी फूलों और किसलयों की कोमल शैय्या पर सुलातीं परन्तु राजकुमारी झुलसकर दुबली ही होती चली गई। उसका समस्त ध्यान कन्दर्पकेतु में

केन्द्रित हो गया। राजकुमारी की ऐसी अवस्था देखकर उसकी प्यारी सखियों ने तमालिका नाम की एक सारिका राजकुमार कन्दर्पकेतु के पास भेजी है। वह राजकुमार की इच्छा जानना चाहती है। वह मेरे साथ आई है और इस पेड़ के नीचे की शाखा पर बैठी है।" इतना कहकर वह सुग्गा चुप हो गया।

यह कहानी सुनकर मकरन्द बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तमालिका को बुलाया और राजकुमार की जो हालत थी वह सब उसे समझा दी। तमालिका ने उसे वह पत्रिका दी जो वह राजकुमारी की सखियों के पास से लाई थी। उसमें राजकुमारी के स्वप्न की सारी बातें लिखी हुई थीं। राजकुमार ने उस पत्रिका को पढ़ा और वह आनन्द से भर उठा। उसे ऐसा लगा जैसे वह अमृत के समुद्र में डूबता चला जा रहा है। वह तमालिका को अपने पास बिठाकर पूछने लगा "वासवदत्ता क्या करती है? क्या कहती है? कैसे बैठती है?" यह पूछते-पूछते सन्ध्या काल आ पहुँचा। वे वहां से चल पड़े। उस समय अस्ताचल की ओर जाता हुआ सूर्य ऐसा लग रहा था मानो सन्ध्या के माथे पर किसी ने लाल तिलक लगा दिया हो। अथवा अस्ताचल रूपी पारिजात वृक्ष का फलों का गुच्छा हो। उन्होंने देखा कि

पक्षी अपने-अपने नीड़ों में प्रवेश करते हुए कलरव कर रहे हैं। घरों में चारों ओर अगरू की धूप की सुगन्धी फैल रही है। नदियों के तटों पर सुन्दर दूब के ऊपर बैठे हुए पण्डित लोग कथा सुना रहे हैं। कथा सुनने को उतावले वृद्ध लोग बच्चों को शोर करने से रोक रहे हैं। घरों के भीतर बूढ़ी स्त्रियाँ सुलाने के लिए बच्चों को थपथपाती हुई लोरियाँ सुना रही हैं। सज्जन लोग सन्ध्या-बन्दन करने के लिए बैठने लगे हैं। बनों में जहां गाय बैठती हैं वहां अब मृगों के झुण्ड जुगाली कर रहे हैं। पश्चिम दिशा में सन्ध्या की लाली ऐसे शोभा दे रही है मानो वरुण देवता ने भगवान् भास्कर के जाने के लिए मार्ग में सब कहीं लाल रेशम के पाँवड़े बिछा दिए हैं।

थोड़ी देर में चारों ओर अन्धकार छा गया। रतौंधी के रोगियों के समान भौंरे कमल-वनों में इधर-उधर भटकने लगे। अन्धकार और बढ़ गया और आकाश में तारे चमक आए। वे ऐसे लग रहे थे मानो ताण्डव नृत्य करते हुए भगवान शंकर की जटा से छिटक कर गंगा-जल की बूंदें आकाश पर इधर-उधर बिखर गई हैं, या आकाश रूपी सरोवर में कुमुद के फूल खिल रहे हों या अन्धकार रूपी धुएं के बीच

सांझ की लाली रूपी अग्नि से तपी हुई आकाश रूपी भाड़ में खीलें तैयार हो रही हों।

कुछ ही देर में उदयाचल की चोटी पर आकाश-रूपी महल के मंगल कलश के समान चन्द्रमा का उदय हुआ। उस समय उसका रंग लाल था। किन्तु धीरे-धीरे वह लाली मन्द पड़ गई मानों चकोरियों ने उसे अपने नेत्रों से पी लिया हो। उस समय वह ऐसा शोभा देने लगा जैसे रात्रि-रूपी व्रज-वनिता द्वारा निकाला गया श्वेत मक्खन का गोला शोभायमान होता है। उसी सुहावने समय में जब चारों ओर का वातावरण कुमुद की सुगंध से भरा हुआ था, सन्ध्या की शीतल वायु बराबर बह रही थी, राजकुमार कन्दर्पकेतु ने अपने मित्र मकरन्द और तमालिका के साथ वासवदत्ता के नगर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ समय के बाद वे उस नगर में पहुँच गए जहां वासवदत्ता रहती थी। राजकुमार ने वहां पहुँचकर वासवदत्ता का महल देखा जिसका शिखर आकाश को छू रहा था। उसके चारों ओर एक परकोटा था जिसमें रत्न जड़े हुए थे। उस महल के ऊपर ऊँची पताकाएँ ऐसे शोभा दे रही थीं जैसे वायु से हिलते हुए आकाश रूपी वृक्ष की मंजरियाँ। उसका आंगन सोनें की शिलाओं

से पटा हुआ था और वहां नहरें प्रवाहित हो रही थीं। उनमें से कपूर, केसर, चन्दन, इलायची और लौंग की महक आ रही थी। उन नहरों के किनारों पर स्फटिक की जो शिलाएँ बिछी हुई थीं उनपर सफेद कबूतर सुखपूर्वक सोए हुए थे। लेकिन रंग की समानता के कारण वे दिखाई नहीं दे रहे थे। किनारे पर उगे हुए फूलों से बराबर महक आ रही थी। वह महल कौतुहल-पूर्ण और विलास की सामग्रियों से भरा हुआ था। वहां वासवदत्ता की सखियाँ और दासियाँ अनेक प्रकार से बातें कर रही थीं। उनकी बातें मन को लुभानेवाली थीं। उन्हींको सुनते हुए कन्दर्पकेतु ने मकरन्द के साथ उस महल में प्रवेश किया।

इस अद्भुत सौन्दर्य को देखते हुए जब वे भीतर पहुँचे तो उसने वादवदत्ता को देखा। उसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। एकटक वह उसको देखता ही रहा और फिर मूर्च्छित हो गया। उसकी यह दशा देखकर वासवदत्ता भी मूर्च्छित हो गई। बाद में मकरन्द और सखियों के प्रयत्नों से उन दोनों को होश आया। वासवदत्ता की प्रिय सखी कलावती ने कन्दर्पकेतु से कहा, "यह समय बात करने का नहीं है। मैं आपको सारी कहानी सुनाती हूँ। राजकुमारी ने आपके लिए

जो कष्ट सहे हैं उसका कुछ अंश यदि आकाश का कागज बनाया जाय, समुद्र की दवात बने, शेषनाग बोलनेवाले हों और ब्रह्मा लिखनेवाले तो शायद हजारों युगों में कठिनाई के साथ लिखा या कहा जा सके। आपने भी तो अपना राज्य छोड़कर इनके लिए अपने को संकट में डाल दिया है। युवती हो जाने पर भी राजकुमारी ने विवाह नही किया। इस बात को इनके पिताजी ने दोष माना है और हठ करके कल सवेरे ही विद्याधरों के सम्राट विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के साथ इनका विवाह करने का निश्चय किया है। इधर हम लोगों के साथ सलाह करके राजकुमारी ने यह निश्चय किया कि यदि तमालिका आपको लेकर आज नहीं लौट आई तो यह आग में प्रवेश कर जायंगी। भाग्य की कृपा है कि आप आ गए। अब आप जैसा ठीक समझें करें।" इतना कहकर राजकुमारी की वह सखी चुप हो गई।

राजकुमार कन्दर्पकेतु ने देर नहीं की। उन्होंने समाचार जानने के लिए मकरन्द को वहां छोड़ दिया और स्वयं मनोजव नाम के बहुत ही तेज चलनेवाले घोड़े पर सवार होकर वासवदत्ता के साथ नगर से निकल गया। लगभग दो कोस चलने के बाद वे एक

श्मशान भूमि में पहुँचे। वहां पर मनुष्य के मांस के लोभी अनेकों पशु-पक्षी और पिशाच निडर होकर घूम रहे थे। बड़ा भयंकर दृश्य था। कहीं पर अधजली चिता में रखे हुए शरीर को बेताल खा जाना चाहते थे। कहीं पर सूली पर चढ़ाए गए चोर के शरीर से बहते हुए रुधिर को देखकर राक्षस खप्पर बजा-बजाकर नाच रहे थे। कहीं पर आग में जलती हुई किसी लाश की खोपड़ी चटक रही थी, उससे निकलता हुआ चट-चट का शब्द बड़ा भयंकर लग रहा था। कहीं पर बांट-बखेरा करने के लिए डाकिनियाँ भीषण कोलाहल कर रही थीं। कहीं पर रक्त से सनी हुई शिराओं के मंगल सूत्र बना कर पिशाच युवक युवतियां विवाह की इच्छा से अग्नि के चारों ओर फेरे ले रहे थे।

इस प्रकार श्मशान के उन भयानक दृश्यों को देखते हुए वे कई योजन का वह रास्ता पार करके विन्ध्यारण्य में पहुँचे। वह विशाल बन विल्व, अर्जुन, सिन्धुवार, श्रीपर्ण, अशोक, सरस, पीतदारू, नाग केसर, हरीतकी और पिपली आदि अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित था। नाना प्रकार की लताएँ उसमें चारों ओर फैल रही थीं। कहीं पर बाँसों के झुरमुट थे तो कहीं पर सुन्दर पलाश के बृक्ष खड़े हुए थे। निर्मल जल से

भरी हुई बहुत-सी नदियाँ वहां बह रही थीं। तरह-तरह के हजारों पशु-पक्षी उसमें घूम रहे थे।

कन्दर्पकेतु बिना कहीं विश्राम और भोजन किए निरन्तर चलता ही रहा। उसने बहुत-सा मार्ग पार कर लिया लेकिन थकान के कारण वह निढाल-सा हो गया। सुकुमारी वासवदत्ता की भी ऐसी ही दशा हो रही थी। इसलिए वे दोनों मन्द-मन्द वायु से हिलते हुए, फूलों की महक से भरे हुए तथा भौरों की गुनगुन से गुंजायमान एक सुन्दर लताकुंज में सो गए। इसी समय काल रूपी धीवर आकाश रूपी विशाल सरोवर से रात रूपी जाल द्वारा मछलियों के समूह के समान तारागणों का अपहरण कर रहा था। कमल खिलने लगे थे और चारों ओर मदमस्त भौंरों का गुंजार आरम्भ हो गया था। लाल मुख का दिन रूपी बन्दर, आकाश रूपी पेड़ पर चढ़कर, दिशा रूपी शाखाओं को हिलाकर फूलों के समान तारा-गणों और फल के समान चन्द्रमा को गिरा रहा था। अरुण किरण रूपी कलगी लगाए दिन रूपी मुर्गा आकाश के आंगन में उतरकर चावल के कणों के समान तारागणों को चुग रहा था। यह चन्द्रमा रूपी ब्राह्मण मेरे संसर्ग से उन्नति को प्राप्त होकर वारुणी (पश्चिम दिशा अथवा मदिरा) के सम्पर्क से नीचे गिर रहा है,

ऐसा सोचकर पूर्व दिशा उसका उपहास-सा कर रही थी। उदयाचल के शिखर से उदय होते हुए भगवान सूर्य का बिम्ब आकाश रूपी पूर्व द्वार पर स्थापित सुनहरे मंगल कलश के समान मालूम हो रहा था।

कुछ समय बाद अब सूरज भगवान सारी दिशाओं को चमकाकर ठीक आकाश के बीच में पहुँच रहे थे तब कंदर्पकेतु की नींद खुली। जागने पर उसने देखा कि वासवदत्ता उसके पास नहीं है। उठकर उसने इधर-उधर ढूँढा। लेकिन राजकुमारी कहीं भी दिखाई नहीं दी। कभी वह पेड़ों की ओर जाता कभी लताओं की ओर। एक क्षण नीचे गड्ढ़ों में देखता दूसरे क्षण पेड़ों की चोटियों पर। उसने उसको पत्तों के ढेरों में टटोला, आकाश में खोजा लेकिन राजकुमारी कहीं भी नहीं दिखाई दी। उसका हृदय हाहाकार कर उठा। वह विलाप करने लगा; "वासवदत्ते! तुम कहां हो? कहां जाकर छिप गई हो? क्या तुम हँसी कर रही हो? नहीं यह समय हँसी करने का नहीं है। तुम्हारे लिए मैंने कितने दुःख उठाए हैं। यह तुम भी जानती हो। तुम जहां हो वहां से आकर मुझे दर्शन दो। हा! प्यारे मित्र मकरन्द मेरा दुर्भाग्य तो देखो। न जाने पिछले जन्म में मैंने कैसे-कैसे काम किए थे। यह भाग्य

की गति कैसी है ? ग्रह मुझ पर कैसे कठोर हो गए हैं ? गुरुजनों का आशीर्वाद कैसा उल्टा फल दे रहा है ? क्या मैंने नियम के अनुसार विद्याएँ नहीं पढ़ी हैं ? क्या मैंने यथोचित रीति से गुरुजनों का सम्मान नही किया है ? क्या मैंने कभी अग्नि की पूजा नहीं की थी ? क्या गायों की प्रदक्षिणा नहीं की थी ? क्या शरण में आए हुए की रक्षा नहीं की थी ? क्या मैंने ब्राह्मणों का अपमान किया था ?" इसी प्रकार वह अपने मन में तर्क-वितर्क करता हुआ अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। और वहां से दक्षिण की ओर चल पड़ा।

वन का वह भाग नरकुल, उशीर, बेत, अशोक, बकुल, करंज आदि अनेक तरह के पेड़ों और लताओं से भरा हुआ था। कहीं नारिकेल के पेड़ों के हरे-भरे वन थे। कहीं पर उलझी हुई झाड़ियाँ छा रही थीं। कहीं पेड़ों पर कोयलें बैठी हुई थीं। कहीं वन कुक्कुट घूम रहे थे। कहीं फूलों की मंजरियों पर मंडराते हुए भौंरे गुंजार कर रहे थे। कहीं पर मृग निश्चिंत बैठे हुए जुगाली कर रहे थे। कहीं नींद के आनंद से अलसाए हुए हाथी अपने कानों को फड़फड़ा रहे थे और कहीं मदमस्त हाथियों के घायल शरीर

के रक्त में सनी हुई सिंहों की अयालें चमक रहीं थीं ।

कन्दर्पकेतु इस वन में चारों ओर घूमने लगा। फिर वहां से निकलकर वह समुद्र के किनारे पर जा पहुँचा। समुद्र की तरंगें बार-बार तट से टकरा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो भगवान् शंकर ताण्डव नृत्य के समय अपनी भुजाओं को चारों ओर पटक रहे हैं। वह तट वरुणदेव की विजय पताकाओं के बड़े-बड़े साँपों की केंचुलियों और जलदेवियों के समान चन्दन के लेप के समान फेन समूह से शोभायमान हो रहा था। सगर पुत्रों[1] के द्वारा खोदा गया वह समुद्र इन्द्र के भय से छिपे हुए पंखों वाले पर्वतों से युक्त और अनेक मणिमुक्ताओं और रत्नों से भरा हुआ था। उसमें हाथियों के समान बड़े-बड़े मगरमच्छ घूम रहे

---

१. पुराणों में कथा आती है कि सूर्यवंशी महाराज सगर ने चक्रवर्ती होने के लिए जब अश्वमेध यज्ञ किया था तब उस यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिए सगर के ६०००० बेटे साथ-साथ चले थे। इस भय से कि यज्ञ के पूर्ण होने पर राजा सगर स्वर्ग के अधिकारी हो जायंगे, इन्द्र ने यज्ञ का वह घोड़ा चुरा लिया था। उसको तलाश करते हुए सगर के पुत्र जब पाताल की ओर चले तो उन्होंने धरती को खोद डाला था। कहते हैं उसी स्थान पर पानी भर जाने से समुद्र बन गया है।

थे। छोटी-बड़ी मछलियाँ भरी पड़ी थीं। जगह-जगह शंख और प्रवाल शोभा दे रहे थे। उसमें चक्कर काटती हुई बड़ी भारी भँवरों से ऐसा मालूम होता था मानो मन्दराचल[1] द्वारा उसके मथे जाने का प्रभाव आज भी बना हुआ है।

मृगी के रोगी के समान वह बराबर फेन उगल रहा था। किनारों पर खिले हुए बकुल के फूलों से उसमें मदिरा की-सी सुगन्ध आ रही थी। लहरों के गर्जन से ऐसा लगता था जैसे वे क्रोध में भरी हुईं हैं। बड़े-बड़े साँप जब निःश्वास लेते थे तब उनसे उसकी खिन्नता प्रगट होती थी। कुटिल तरंगों के कारण ऐसा लगता था मानो वे भौंहें तरेर रही हैं। पत्नियों के समान अनेक नदियाँ उसमें प्रवेश कर रहीं थीं।

वासवदत्ता के विरह के दुःख से दुखी कन्दर्पकेतु अपने जीवन को समाप्त करने के लिए समुद्र को देखकर सोचने लगा, भाग्य ने मेरे साथ अपकार करके मुझे इस समुद्र तट पर लाकर मेरे साथ उपकार भी

---

१. देवासुर संग्राम के समय एक बार देवों और दानवों में सुलह हो गई और भगवान् विष्णु के कहन पर दोनों न समुद्र का मंथन स्वीकार कर लिया। उस समय मन्दराचल को रेही और वासुकी नाग को रस्सी बनाया गया था। तभी समुद्र से नवरत्न निकले थे।

किया है। अपना शरीर इसके हवाले करके मैं अपनी विरह की आग को शान्त करूँगा। यद्यपि स्वस्थ मनुष्य के लिए आत्महत्या करना पाप है ; शास्त्र के विरुद्ध है, लेकिन मुझे तो ऐसा करना ही पड़ेगा। सब लोग शास्त्रों के अनुसार कहां चलते हैं? इस असार संसार में कौन क्या नहीं करता? चन्द्रमा ने गुरुपत्नी को चुराया था। ब्राह्मण के धन की इच्छा करने से पुरुरवा का नाश हो गया था। दूसरे की स्त्री पर दृष्टि डालने के कारण राजा नहुष को सर्प बनना पड़ा था। राजा ययाति का पतन इसी कारण हुआ कि उसने ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया था। सुद्युम्न स्त्री बन गया था। अपने पुत्र जन्तु को मार डालनेवाले सोमक की निर्दयता के बारे में कौन नहीं जानता। कुवलयाश्व ने नागकन्या का हरण किया। पुरुकुत्स तो कुत्सित ही हो गया। राजा नृग गिरगिट की योनि को प्राप्त हुआ। कलि के प्रभाव के कारण राजा नल की निन्दा हुई। संवरण सूर्य की बेटी तपती के लिए धीरज खो बैठा। राजा दशरथ अपनी प्रिय पत्नी के कारण पागल होकर मर गए। सहस्रबाहु ब्राह्मण को कष्ट देने के कारण नष्ट हुआ। शान्तनु बहुत व्यसनी था इसलिए उसे विलाप करना पड़ा। युधिष्ठिर ने युद्ध भूमि में झूठ

बोला। यह सब देखते हुए इस संसार में कोई भी निर्दोष नहीं कहा जा सकता। मैं भी शरीर का त्याग करूँगा। यह सोचकर वह समुद्र तट पर पहुँचा। उस समय वह तट-प्रदेश मछलियों को खानेवाले तरह-तरह के पशु पक्षियों से भरा हुआ था। बनैले भैंसों ने उसे खोदकर ऊँचा-नीचा कर दिया था। तेज वायु के कारण बड़ी-बड़ी लहरें उससे टकरा रही थीं। अनेक प्रकार के शंख, सुक्तियाँ और मोती वहां शोभा दे रहे थे।

धीरे-धीरे कन्दर्पकेतु अपना शरीर त्यागने के लिए समुद्र में उतरने लगा। मगरमच्छों, मछलियों और कछुओं आदि समुद्र के जीवों ने उसको देखा और उनका मन दया से भर उठा। उन्होंने हिंसा भाव त्याग दिया। वह और आगे बढ़ा। वह डूबने ही वाला था कि उसके कानों में आकाशवाणी का यह स्वर सुनाई दिया—आर्य कन्दर्पकेतु तुम अपने शरीर का त्याग न करो, बहुत जल्द ही राजकुमारी तुम्हें मिल जायगी।

कन्दर्पकेतु को यह सुनकर बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने मरने का विचार त्याग दिया। इसके बाद भोजन की इच्छा से वह समुद्र तट के पास वाले वन

में पहुँचा। वहां पर वह इधर-उधर घूमने लगा और कन्दमूल खाकर उसने बहुत-सा समय बिता दिया।

धीरे-धीरे वर्षा काल आ पहुँचा। चारों ओर नदी नाले जल से भर गए। मोर नाचने लगे। धूल बैठ गई। ऊँचे-ऊँचे सरकंडों से वन भरने लगा। मृग, चातक आनन्द से भर उठे। श्याम वर्ण के मेघों से भरा हुआ आकाश में इन्द्रधनुष शोभा देने लगा। बादलों के नीचे उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानों गर्मी की ऋतु में प्यास के कारण जल पीते समय बादल समुद्र के जल के साथ शंखों को भी पी गए थे और अब उन्हें बाहर निकाल रहे हैं। आकाश में चमचमाती हुई बिजली की रेखा ऐसे मालूम होती थी मानों वर्षा ऋतु रूपी सुनार मेघ रूपी कसौटी पर सोने की रेखा खींच रहा हो। वायु के वेग से उठते हुए जलकण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों विद्युल्लता रूपी चमचमाते हुए आरे से चीरे जाते हुए मेघ पटल का बुरादा बिखर रहा हो। वीर-बहूटियों से भरे हुए दूब के मैदान ऐसे मालूम होते थे मानों पृथ्वी ने अपनी लाल बूंदीवाला हरा दुपट्टा ओढ़ रखा है। इस प्रकार जब वर्षा रूपी दासी वसुन्धरा देवी को मेघरूपी कलशों से स्नान कराकर चली गई

तो स्वच्छ आकाश रूपी साड़ी को लेकर शरद् ऋतु के रूप में दूसरी दासी उसके समीप आई।

शरद् काल के आरम्भ होने पर आकाश स्वच्छ और नीला हो गया। क्रौंच और खंजन पक्षी मुक्त होकर विहार करने लगे। राजहंस अपने पहले के जलाशयों में लौट आए। सारसों के कोलाहल से सरोवर गूंजने लगे। धानों के खेत तोतों के शब्दों से भर गए। कमलों की महक से महकती हुई समीर बहने लगी। ऐसे सुहावने समय में इधर-उधर घूमते हुए एक बार कन्दर्प-केतु ने एक पत्थर की मूर्ति में राजकुमारी की समानता देखी और अपने हाथ से उसे छुआ। छूते ही पत्थर की वह मूर्ति जीती-जागती वासवदत्ता के रूप में बदल गई। यह देखकर राजकुमार के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसने राजकुमारी को गले लगा लिया। पूछने लगा, "यह क्या बात थी? तुम कहां चली गईं थीं? इस पत्थर की मूर्ति से कैसे प्रगट हुईं!"

एक लम्बी सांस खींचकर वासवदत्ता ने उत्तर दिया, "आर्यपुत्र! मुझ अभागिन के कारण आपने कितना कष्ट सहा। राज्य छोड़ा। जब आप इस वन में भटकते हुए दुःख भोग रहे थे और एक दिन थकान और भूख प्यास से दुखी होकर लता-मंडप में सो रहे थे

तब मैं आपसे पहले जाग गई थी। उस समय मैंने सोचा कि क्यों न आपके जागनें से पहले आपके लिए कन्द-मूल ले आऊँ। इसी विचार से मैं उस वन में थोड़ी दूर आगे बढ़ गई। क्या देखती हूँ कि वृक्षों और झाड़ियों की ओट में बहुत-से सैनिक खड़े हैं। मेरे मन में विचार उठा कि क्या ये मुझे पकड़नें के लिए आए हुए पिताजी के सैनिक हैं। या आर्यपुत्र की सेना है। मैं यह सोच ही रही थी कि एक किरात सेनापति मेरी ओर लपका। उससे बच निकलनें के लिए मैं दूसरी ओर मुड़ी तो क्या देखती हूँ कि उधर से एक दूसरा किरात सेनापति मेरी ओर दौड़ रहा है। फिर तो एक ही मांस के टुकड़े के लिए झपटते हुए गिद्धों के समान वे दोनों सेनापति आपस में लड़नें लगे। यही नहीं उन दोनों की सेनाओं में भी बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से घनघोर बाण वर्षा होने लगी। वीरों के शरीर कट-कटकर गिरने लगे। थोड़ी ही देर में वह सारा वन-प्रदेश रुण्ड-मुण्डों से पट गया और देखते-देखते वे दोनों सेनाएँ आपस में लड़कर नष्ट हो गईं। एक भी व्यक्ति उनमें जीवित नहीं बचा। मैं बुरी तरह घबरा रही थी लेकिन जब युद्ध का वह बवंडर शान्त हुआ तो एक मुनि वहां पर प्रगट हुए। क्रोध में भरे

हुए तीव्र स्वर में उन्होंने मुझसे कहा, "ओ दुष्टा ! तेरे ही कारण मेरा यह आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हुआ है। मैं तुझे शाप देता हूँ कि तू पत्थर की मूर्ति बन जा।"

उनके ये शब्द सुनकर मैं और भी डर गई और हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने लगी। मैंने उनको अपनी सारी कहानी सुनाई। जब उन्हें दुःखपूर्ण परिस्थिति का पता चला तो उनका हृदय दया से भर उठा। उन्होंने कहा, "मेरा यह शाप टल नहीं सकता। तुमको पत्थर की मूर्ति बनना ही पड़ेगा। लेकिन जब तुम्हारे पति तुमको छुएंगे तो तुम शाप से मुक्त हो जाओगी। आज आपने मुझे छुआ। हमारा सौभाग्य उदय हुआ। हम फिर एक दूसरे से मिल गए।"

यह कथा सुनकर कन्दर्पकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और वासवदत्ता को लेकर अपने नगर की ओर चल पड़ा। उधर मकरन्द भी कुसुमपुर से लौट रहा था। मार्ग में दोनों मिल गए। इसके बाद अपनी राजधानी में पहुँच-कर राजकुमार कन्दर्पकेतु अपनी प्रिय पत्नी वासवदत्ता और प्रिय मित्र मरकन्द के साथ बहुत समय तक सुख पाता रहा।

परिशिष्ट

[पृष्ठ २२-२३ पर जिन घटनाओं की चर्चा आई है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। इनमें से कुछ कथाएँ कथा न होकर केवल अलंकार हैं जैसे चन्द्र और तारा की कथा। इसका सम्बन्ध नक्षत्रों की चाल से है।]

१. चन्द्रमा—पौराणिक राजाओं की एक प्रसिद्ध शाखा 'चन्द्रवंशी' राजाओं के चलाने वाले माने जाते हैं। वह देवता थे और देवताओं के गुरु थे वृहस्पति। वृहस्पति की पत्नी तारा बहुत सुन्दर थी। चन्द्रमा उसे चुरा लाये थे। इस पर देव-दानवों में भयंकर युद्ध हुआ। देवता वृहस्पति की ओर थे और दानव चन्द्रमा की ओर। अन्त में ब्रह्मा ने बीच-बचाव कराकर तारा को वृहस्पति को वापिस करवा दिया।

२. पुरुरवा—चन्द्र वंश के पहले राजा माने जाते हैं। बुध चन्द्रमा और तारा के पुत्र थे। बुध के पुत्र थे पुरुरवा। वह बड़े प्रतापी थे और इन्होंने देव-वारांगना उर्वशी से विवाह किया था। इनके जेठे पुत्र का नाम आयु था। ब्राह्मण के दान की कथा क्या थी, इसका कुछ पता नहीं लगता।

३. नहुष—चन्द्रवंश के प्रतापी राजा पुरुरवा के पोते और आयु के बेटे थे। यह इतने प्रतापी थे कि अपने जीते जी इन्द्र बन गए थे। देवलोक के महाराज इन्द्र किसी पाप के कारण स्वर्ग से निकाल दिये गए थे तभी देवताओं ने धरती से बुलाकर इन्हें अपना राजा बनाया था। स्वर्ग का राजा बनकर इन्होंने चाहा कि इन्द्र की पत्नी शची भी इनकी पत्नी बने। यही नहीं उनसे विवाह करने के लिए यह ऐसी पालकी में बैठकर चले जिसे ऋषि लोगों ने उठा रखा था। बेचारे तपस्वी, वे धीरे-धीरे चल रहे थे और राजा थे उतावले। क्रोध में आकर उन्होंने एक ऋषि के लात मार दी। इसपर ऋषि क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने श्राप दिया, 'तुम साँप बनो' और वह साँप बनकर धरती पर गिर पड़े।

४. **ययाति**—नहुष के प्रतापी पुत्र थे । एक बार शिकार से लौटते हुए उन्होंने कुएँ में पड़ी एक कन्या को निकाला । वह दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की बेटी देवयानी थी । वह बोली—'तुम ने मेरा हाथ पकड़ कर निकाला है । तुम्हीं मुझसे विवाह करो ।' देवयानी का दैत्यों के राजा की बेटी शर्मिष्ठा से झगड़ा हो गया था इसी कारण जब देवयानी का विवाह ययाति से हुआ तो शर्मिष्ठा दासी के रूप में उसके साथ गई । बाद में ययाति ने गुप्त रूप से शर्मिष्ठा से भी विवाह कर लिया था । इसी बात को लेकर देवयानी क्रुद्ध हो गई थी और उसके पिता शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़ा हो जाने का श्राप दिया था। ययाति के पांच पुत्र थे। जेठे यदु के कुल में श्रीकृष्ण हुए और कनिष्ठ पुरु के कुल में कौरव-पाण्डव ।

५. **सुद्युम्न**—पुराण प्रसिद्ध श्राद्धदेव मनु के पुत्र थे । वास्तव म जन्म के समय सुद्युम्न कन्या थे । महामुनि वशिष्ठ ने अपने तपोबल से कन्या को पुत्र बना दिया था । बाद में युवा होकर जब वह सुमेरु पर्वत की तलहटी में शिकार खेलने गये तो फिर नारी बन गए । उस बन म शिव पार्वती रहते थे । उन्होंने कह रखा था कि जो इस वन में आयगा वह नारी बन जायगा। नारी बनकर उसने चन्द्रमा के पुत्र बुध से विवाह किया। पुरुरवा इन्हींके पुत्र थे । बाद में बह ६ महीने पुरुष और ६ महीने स्त्री रहते थे ।

६. **सोमक**—यह भी चन्द्रवंशी राजा थे। द्रौपदी के पिता द्रुपद इन्हींके पड़पोते थे । सोमक के पुत्र जन्तु, जन्तु के पृषत, पृषत के द्रुपद। पुत्र हत्या की कथा हमें मालूम नहीं हो सकी ।

७. **कुवलयाश्व**—अयोध्या के इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं में एक प्रतापी राजा हुआ है । इसने उतंक ऋषि की रक्षा के लिए धुन्धु नामक राक्षस को मार गिराया था । इसीलिए इसे धुन्धुमार भी कहते थे । शायद इसने नाग राजाओं की किसी कन्या का हरण किया होगा ।

८. **पुरुकुत्स**—सूर्यवंश के प्रबल प्रतापी चक्रवर्ती नरेश मान्धाता के पुत्र तथा पुराण प्रसिद्ध अम्बरीष और मुचुन्कन्द के बड़े भाई थे । इनका

विवाह सर्पो (शायद नागवंशी नरेश) की बहन नर्मदा से हुआ था। पाताल में जाकर इन्होंने गन्धर्वों को मारा था। हरिश्चन्द्र इन्हींके वंशज थे। यह कुत्सित क्यों हुए कुछ पता नहीं।

९. **नृग**—सूर्यवंश के पहले नरेश इक्ष्वाकु के पुत्र थे। वह प्रसिद्ध दानी थे। एक बार पहले दान की गई एक गाय नई गायों में आ मिली और फिर से दान कर दी गई। इस गाय के दोनों मालिकों में झगड़ा हुआ और उन्होंने राजा का दान स्वीकार नहीं किया। कहते हैं कि इसी पाप के कारण राजा नृग को कुछ दिन गिरगिट की योनि में रहना पड़ा था।

१०. **राजा नल** की कथा सभी जानते हैं। कलि के प्रभाव के कारण उनकी मति भ्रष्ट हो गई थी। उन्होंने जुए में राजपाट खोकर बनों की खाक छानी, दमयन्ती को छोड़ा, सारथी बने। अन्त में जब कलि का प्रभाव नष्ट हो गया तब इनके भी सब दुःख दूर हो गये।

११. **संवरण** हस्तिनापुर के भरतवंशी राजा थे। एक बार उत्तर-पंचाल के राजा सुदास ने इन्हें मार भगाया था। बाद में यह फिर लौट आये और इन्होंने अपना राज्य ही नहीं जीता बल्कि उत्तरपांचाल पर भी अधिकार कर लिया। इनका विवाह वैवस्वत मनु की बेटी तपती से हुआ था। वैवस्वत् आदित्य कहलाते थे। इसीलिए इन्हें सूर्य भी कहा है। तपती और संवरण के पुत्र सुप्रसिद्ध प्रतापी नरेश कुरु थे। इन्हींके वंशज कौरव प्रसिद्ध हुए। और सरस्वती के पास का प्रदेश कुरु कहलाया।

१२. **राजा दशरथ** की मृत्यु का कारण कैकेयी थी। उसे वह बहुत प्यार करते थे और उसीके दो वरों के कारण वह राम को वन भेजने पर विवश हुए थे; यह कथा कौन नहीं जानता।

१३. **सहस्रबाहु** हैहयवंश के प्रबल प्रतापी नरेश थे। इन्होंने कामधेनु गाय न देने के कारण परशुराम के पिता जमदग्नि की हत्या कर डाली थी। उसीका बदला लेने के लिए परशुराम ने न केवल सहस्रबाहु का नाश किया बल्कि सारे देश के क्षत्रिय राजाओं को मार डाला था।

१४. **शान्तनु** कुरुवंश के प्रसिद्ध नरेश और भीष्म पितामह के

पिता थे। बुढ़ापे में उन्होंने केवट की कन्या सत्यवती से विवाह किया था। इसी विवाह के कारण भीष्म को राज्य छोड़ना पड़ा था और उन्होंने आजन्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा भी की थी। यह कथा सभी जानते हैं।

१५. **युधिष्ठिर** के झूठ बोलने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। द्रोणाचार्य की मृत्यु तभी हो सकती थी जब वह हथियार छोड़ दें। हथियार तभी छूट सकते थे जब वह पुत्र की मृत्यु का समाचार सुन लें। पुत्र अमर था। भीम ने अश्वत्थामा हाथी को मारकर बड़ा शोर मचाया कि अश्वत्थामा मर गया पर जबतक सत्यवादी युधिष्ठिर न कह दें तबतक द्रोण विश्वास कैसे करें? तब कृष्ण के कहने पर युधिष्ठिर ने कहा था "अश्वत्थामा मर गया मनुष्य या हाथी।" 'मनुष्य या हाथी' शब्द उन्होंने बहुत धीरे से कहे थे। द्रोणाचार्य उन्हें न सुन सके और उन्होंने हथियार डाल दिये। तब द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने उन्हें मार डाला।

●

'संस्कृत साहित्य सौरभ'
की
पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता

मूल्य प्रत्येक का छः आना

२६